Vol. IX
Number-3

ISSN 2319-7129
(Special Issue) January, 2018

UGC Notification No. 62981

EDU WORLD

A Multidisciplinary International
Peer Reviewed/Refereed Journal

APH PUBLISHING CORPORATION

Scanned by CamScanner

ISSN : 2319-7129

EDU WORLD

A Multidisciplinary International Peer Reviewed/Refereed Journal

Vol. IX, Number - 3 January, 2018

(*Special Issue*)

Chief Editor

Dr. S. Sabu

Principal, St. Gregorios Teachers' Training College, Meenangadi P.O., Wayanad District, Kerala-673591. E-mail: drssbkm@gmail.com

Co-Editor

S. B. Nangia

A.P.H. Publishing Corporation

4435–36/7, Ansari Road, Darya Ganj,
New Delhi-110002

Scanned by CamScanner

CONTENTS

Computer Science Research in India 1
Dileep Kumar Verma (Er.)

Finance Problems Faced by Parents in Maintenance of Cochlear Implant 16
Mr. Kamlesh Kumar Yadav

Effect of Resistance Cycling on Selected Fitness Variables Among Field Hockey Players 25
Dr. Arun S. S. Kumar

Hyphomycetes Fungi From Black Cotton Soil from Newasa Taluka Ahmednagar District (M. S.) 29
S. P. Ghanwat

Diversity of Chlorophyceae from Sulwade Barrage of River Tapti-II, Dhule, (M. S., India) 33
Sandhya Patil

A Critical Review on Diabetes and its Complications! 38
Gazala Khan

Opportunities and Challenges in the Teaching of Political Science 48
Aparna Jha

फिल्में : कल, आज और कल भी 53
प्रा. राजेश दत्तात्रय झनकर और डॉ. दिपा दत्तात्रय कुचेकर

कोसल तथा उसके पुरास्थलों की पहचान 59
रजनी त्रिपाठी

मराठी प्रवासवर्णनाची वाटचाल (इ.स. १८०० ते १९७५) 65
डॉ. वसंत दामोदर सपकाळ

Hepatopancreatic free Amino Acid Contents of the Crab, ***Paratelphusa Jacquemontii*** Exposed to Cythion 69
Dr. S. B. Chaudhari

Study on Physicochemical Parameters of Upavan Lake, Thane 73
S. B. Chaudhari

Scanned by CamScanner

Impact of Knowledge Sharing on Employee Performance Among the Employees of it Professionals in Bangalore 253
Nabi A., Dr. K. Anandanatarajan and Dr. P. Balathandayutham

Measuring Financial Inclusion of Southern Region through FII (Financial Inclusion Index) 258
Baig Mansur Ibrahim and Dr. K. Tamizhjyothi

Marketing Challenges Faced by SHG: Study of Conceptual Perspective 270
N. Kasambu and Dr. R. Sritharan

Sports Culture in India and the Role of Social Media 275
Dr. Nidhi Choudhary

Effectiveness of Web Based Instruction and Classroom Instructions: A Meta Analysis 280
Dr. (Mrs) Vipinder Nagra and Jiwanjot Kaur

वर्ण और जाति पर बुद्ध के विचार : एक अध्ययन 291
डॉ. अमित कुमार राय

उच्च प्राथमिक स्तर के शिक्षकों की अभिवृत्ति उनकी शिक्षक प्रभावशीलता के निर्धारक के संदर्भ में अध्ययन 295
Dr. Mukesh Kumar Gupta

Sceptical Reception of the Prophecies of Tiresias, the All-Perceiving Blind Seer of Thebes 314
Md. Bagbul Islam

"New Era in Japan-India Relations": An Assessment 319
Abhay Kumar

कबीर खड़ा बाजार 324
डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

Grandparenting Children with Diabilities 334
Dr. Reema Lamba

Interoperability Between Architectural Engineering Construction (AEC) Domain and Geographical Information Systems (GIS) Cloud: A Scientometric Review 337
Ravindra D. Kene and Dr. P. N. Mulkalwar

Scanned by CamScanner

कबीर खड़ा बाजार

डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे*

प्रस्तावना

बाजार हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है क्योंकि जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ हमें वहाँ से प्राप्त होती है। बाजार सैकड़ों वर्षों से है और निरंतर अपने स्वरूप को बदल रहा है आज यह बाजार वैश्विक–ग्राम के युग में बाजारवाद लेकर आया है। आज चारों तरफ बाजारवाद के खतरों की चर्चा है, बाजार को कोसा जा रहा है। ऐसे समय में मध्यकाल के संत कबीर 'लिए लुकाठी' बाजार के बीच खड़े नजर आते हैं। उनका इस तरह अडिग खड़े रहना हमें 'ग्लोबल मार्केट' में खड़े होने की ताकत देता है। वे बाजार में प्रतिनिधि के रूप में खड़े हैं। उनका प्रतिनिधित्व वंचित वर्ग का, साहित्यकार वर्ग का, पत्रकार, चिंतक, विचारक, कारीगर, व्यापारी वर्ग का, मानवता का पक्ष लेकर खड़ा है और सबको ताकत देता है। वे बाजार के खतरों से सावध ाान करते हैं और बाजार में टिके रहने के गुर भी बताते हैं। वे क्रांतिकारी कवि, संत, प्रखर वक्ता, समाज सुधारक हो सके इसके पीछे बाजार की ताकत भी शामिल थी। समकालीन सन्दर्भों में कबीर के इस पक्ष की पड़ताल जरूरी है।

बीज शब्द – बाजार, बाजारवाद, लुकाठी, बैर, माया, आधुनिक, उत्तर आधुनिक, जागत, बिसाहुणा, भाटी, माटी, महल, चदरिया, चरखा, जतन, चौपड़, अरध–उरध, बुरा कमाई, ग्लोबल, लोकल, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, वर्णव्यवस्था, व्यापार, मनुस्मृति, मार्केट, वंचित वर्ग, सशक्तिकरण।

कबीर का अर्थ है – वीर, योद्धा। कबीर केवल एक नाम नहीं हैं, कबीर एक आग हैं, आंदोलन हैं, क्रांति हैं जो अशुभ को जलाकर राखकर देने और शुभ को पुनः स्थापित करने की क्षमता रखते हैं। कबीर एक संत, एक कवि, एक समाज सुधारक के रूप में तो दिखाई पड़ते हैं, परंतु उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे खुले आसमान की तरह हैं जिन्हें किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। उनका समय संक्रमण का संघर्ष का समय है और उस कठिन समय में भी वे हमारे सच्चे प्रतिनिधि बनकर सामने आते हैं। कबीर बाजार में खड़े हैं और सबकी खैरियत (कुशलता) चाहते हैं–

कबिरा खड़ा बाजार में माँगे सबकी खैर
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर

विकिपीडिया के अनुसार बाजार ऐसी जगह को कहते हैं जहाँ पर किसी भी चीज का व्यापार होता है। दूसरे शब्दों में जहाँ पर वस्तुओं और सेवाओं का क्रय व विक्रय होता है उसे बाजार कहते हैं। सामान्यतः बाजार का अर्थ उस स्थान से लगाया जाता है, जहाँ भौतिक रूप से उपस्थित क्रेताओं द्वारा वस्तुओं को खरीदा तथा विक्रेताओं द्वारा बेचा जाता है। अर्थशास्त्र के अंतर्गत बाजार शब्द से अभिप्राय उस समस्त क्षेत्र से है, जहाँ किसी वस्तु के क्रेता विक्रेता आपस में स्वतंत्रतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करते हैं।

*सहायक प्राध्यापक हिन्दी शास. महाविद्यालय सनावल, जिला-बलरामपुर (छ.ग.)

Scanned by CamScanner

कबीर बाजार में क्यों खड़े हैं? क्योंकि कबीर को बाजार से ही ताकत मिली। कबीर मेहनतकश श्रमजीवी समाज से हैं और श्रम का बाजार से और बाजार का कबीर के कवि कर्म से गहरा ताल्लुक है।(1)

बाजार का महत्व सर्वविदित है क्योंकि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के आधार बाजार ही होते हैं, साथ ही ये हमारी आवश्यकता की पूर्ति में बहुत मददगार साबित होते हैं। ये बाजार प्राचीन काल से हैं और समय–समय पर अपने स्वरूप को बदलते रहते हैं।

कबीर जिस समय बाजार में खड़े थे, उस समय छोटे–छोटे बाजार बन रहे थे, जहाँ शहर, बाजार और व्यापार अपनी दस्तक दे रहे थे। साथ ही व्यापारी एवं कारीगरों के गहरे संबंध बनने लगे थे। कबीर के समय उत्पादन पद्धति, उत्पादन के औजार और संबंधों में बदलाव आ रहे थे। कबीर नई उत्पादन शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो नए सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति भी है।(2) कबीर बाजार की आर्थिक ताकत से उठ खड़े हो सके हैं। इसलिए वे बाजार से जाते नहीं बल्कि बाजार सजाते हैं और स्वयं को बाजार में स्थापित करते हैं।

शक्ति के मूल चार केन्द्र कहे जा सकते हैं जिनमें राजसत्ता, धर्मसत्ता, राजसत्ता और जनसत्ता आदि हैं। कबीर के समय जनसत्ता नहीं थी लोकतंत्र कहीं अस्तित्व में नहीं था इसलिए जनता की आवाज उठाई नहीं जा सकती थी। फिर भी उन्होंने निर्भीक होकर जनता की आवाज उठाई। कालान्तर में विशेषकर स्वतंत्रता संग्राम के समय यह कार्य पत्रकारिता ने किया। कबीर के समय लोकसत्ता (जनसत्ता) का केन्द्रीकरण संभव न था। समाज का कानून मनुस्मृति से संचालित था जहाँ वर्ण विभाजन के साथ–साथ कार्य (श्रम) विभाजन भी तय था। ब्रम्हा के मुख, भुजा, जंघा और पाँवों से क्रमशः उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण व्यवस्था के अनुसार ही कर्म करने को बाध्य थे और उनकी प्रतिष्ठा व जीविकोपार्जन का आधार उनके कर्म थे। फलतः निम्न कही जाने वाली जातियाँ ऊपर नहीं आ सकीं और उच्च कही जाने वाली जातियों के नीचे जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था क्योंकि उन्हें श्रेष्ठ बनाये रखने के लिए ही सारा आयोजन था। इस तरह क्षत्रिय राजसत्ता पर, ब्राह्मण धर्मसत्ता पर और वैश्य अर्थसत्ता पर आसीन थे और शूद्रों का काम चाकरी (सेवा) करना था। अनेक विद्वान यह मानते हैं कि कबीर उस मेहनतकश समाज से हैं जिसे आज दलित समाज कहा जाता है। कबीर दलितों के प्रतिनिधि के रूप में बाजार में खड़े होकर ब्राह्मणवाद और उसके हिन्दुत्व को चुनौती दे रहे थे।(3)

ब्रम्हा में अपने अलग–अलग अंगों से उत्पन्न वर्णों के लिए अलग–अलग कर्म निर्दिष्ट किए (मनुस्मृति 1–87), जिसमें शिक्षा और धर्म का कार्य ब्राह्मणों को (मनुस्मृति 1–88), प्रज्ञा का संरक्षण क्षत्रिय के लिये (मनुस्मृति 1–89), पशुपालन व व्यवसाय वैश्य के लिए (मनुस्मृति 1–90 और उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा का कार्य शूद्रों के लिये (मनुस्मृति 1–93) तय किये गये। ब्राह्मण को जन्म से सर्वोपरि (मनुस्मृति 1–99) एवं संसार के समस्त धन का स्वामी (मनुस्मृति 1–100) घोषित किया गया था। शूद्र को धन संचय का अधिकार न था (मनुस्मृति 8–417), बल्कि उसके खाने के लिए जूठन, पहनने को पुराने कपड़े, छोड़े हुए अन्न और फटे–पुराने बिछावन देने का (मनुस्मृति 10–125) प्रावधान किया गया था।

इन तमाम वर्जनाओं ने देश के बहुसंख्यक (शूद्र) वर्ग को धन, बल, पद–प्रतिष्ठा, सम्मान से वंचित रखा और देश कमजोर हो गया। फलतः अनेक आक्रमणकारियों ने इस देश पर राज किया। वर्ण व्यवस्था के कारण

Scanned by CamScanner

मुट्ठीभर लोग शक्तिशाली हो गये और बहुसंख्यक वर्ग शक्तिहीन हो गया। समाज और देश के पतन का एक बड़ा कारण सिर्फ और सिर्फ सामाजिक आर्थिक वर्जनाएँ थी।[4]

कबीर राजसत्ता और धर्मसत्ता के अमानवीय प्रथाओं परंपराओं, मान्यताओं से खुलकर लड़ रहे थे क्योंकि बाजार की ताकत भी साथ थी उनकी उद्घोषणा (कबिरा खड़ा बाजार में) व्यावसायिक दखल (अर्थसत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने) की घोषणा है।

जिस समय कबीर आये उस समय भक्ति की लहर थी। मुसलमान शासक सत्ता पर काबिज हो चुके थे। भारतीय जनता में संघर्ष, अंतर्कलह निराशा और कुंठा थी साथ ही हिन्दू मुस्लिम टकराव हो रहे थे ऐसे समय में कबीर समन्वयवादी निर्गुण संत व कवि के रूप में सबको साथ लेकर चलने वाले और सबकी चदरिया का मैलापन दूर कर ज्यों की त्यों धर देने का मानवीय प्रसास (मील का पत्थर) करने वाले संत हैं और वे व्यापार को पर्याप्त महत्व देते हैं। कबीर कहते हैं – सांई मेरा वाणियाँ सहजि करै व्यौपार। कबीर ने माया की जो निन्दा की है। उसके संबंध में पुरूषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं कि – माया की निन्दा करने के लिए समाज में पहले माया होनी चाहिए। वे जैक गुडी के निष्कर्ष का उल्लेख करते हैं कि उस समय के भारत में बनियों–व्यापारियों का असंदिग्ध महत्व था। साथ ही वे मानते हैं कि प्राचीन भारत के बौद्ध और जैन धर्मों का सामाजिक आधार भी व्यापारी वर्ग था और आधुनिक काल में ब्राह्मणवादी विचारधारा का सक्रिय प्रतिरोध करने वाले अध्यात्म पंथ की स्थापना जवाहरात के व्यापारी बनारसीदास ने की थी और कबीर पंथ स्थापना 'ध ानी' धर्मदास ने।[5] निष्कर्षतः समझना चाहिए कि व्यापार (बाजार) की ताकत से ही विद्रोह, क्रांति, परिवर्तन की घटनाएँ होती रही हैं। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल भी इससे अछूता नहीं रहा है, भले ही इसका मूल्यांकन इस दृष्टि से नहीं हुआ।

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल अर्थात, भक्तिकाल मानवता के जागरण, संघर्ष और प्रतिद्वन्द्व का काल है। इसमें विविध और विपरीत प्रतिभाओं के आयाम समाहित हैं। सूर हैं तो तुलसी हैं, कबीर हैं तो जायसी हैं, सगुण है, निर्गुण है, राममार्गी–कृष्णमार्गी, ज्ञानमार्गी–प्रेममार्गी, संत काव्य–सूफी काव्य की परंपराएँ हैं जो बहुत गहरी, ऊँची और विविध आयामी है। इनमें कही समानता है तो कहीं विपरीतता भी है। आडियोलाजी की दृष्टि से भी सर्वथा भिन्न भाव–भूमि है। कहाँ वर्ण व्यवस्था के पोषक तुलसी और कहाँ वर्ण–व्यवस्था के भंजक कबीर। लेकिन किसी कवि की प्रतिभा कमतर नहीं है। इनकी समीक्षा करने वाले समीक्षक अपनी दृष्टि लेकर आते हैं उनके पास इन्हें तौलने के अपने–अपने पैमाने हैं, सबके तराजू–बाट अलग–अलग हैं, जिसके आधार पर कोई किसी को मूल्यवान और श्रेष्ठ सिद्ध करता है तो कोई किसी और को प्रथम मानता है। कई समीक्षक तो व्यक्ति से प्रभावित हैं उनके लिए व्यक्तित्व गौण हो गया है। और यदि जन्म को आधार मानकर आकलन किया जाए तो प्रतिभा कहीं दिखाई नहीं देती। इस संदर्भ में कबीर व्यक्तित्व, संतत्व, कवित्व की दृष्टि से विराट कवि हैं पर सर्वाधिक उपेक्षित या यूँ कहें हाशिए पर धकेल दिए गए हैं। कई लोग केवल उनकी जाति पर शोध करते नजर आते हैं। इक्कीसवीं सदी के सर्वाधिक विद्रोही और सम्बुद्ध चेतना ओशो उन्हें बुद्ध से भी अधिक प्रतिभाशाली मानते हैं, गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर जैसी प्रतिभा उनसे गहनतम रूप में प्रभावित हैं यही नहीं भारत का बहुसंख्यक जनमानस कबीर और उनकी आडियोलाजी का समर्थक और अनुयायी है। कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी है, उनका रचना संसार भी बहुआयामी है।

Scanned by CamScanner

कबीर के जन्म के संबंध में मत–भिन्नताएँ हैं पर इस बात को अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं कि कबीर का लालन–पालन जुलाहा परिवार में हुआ। इस जुलाहा जाति को लेकर भी लेखकों ने अनेक मत व्यक्त किए हैं कोई ग्रंथ शूद्र और संकर जाति मानता है तो कोई मत इन्हें मुसलमान स्वीकार करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–"जिन दिनों कबीरदास इस जुलाहा जाति को अलंकृत कर रहे थे उन दिनों, ऐसा जान पड़ता है कि इस जाति ने अभी एकाधपुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था। कबीरदास की वाणी को समझने के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम इस बात की जानकारी प्राप्त कर लें कि उन दिनों इस जाति के बचे–खुचे पुराने संस्कार क्या थे।"(6)

एक तरफ कबीर कहते रहे "जाति न पूछो साधू की" और दूसरी तरफ इतिहासकार, लेखक, समीक्षक उनसे केवल उनकी जाति पूछते रहे। कबीर यह उद्घोषणा करते रहे कि वे मानव मात्र है – "ना–हिन्दू, ना–मुसलमान" लेकिन उनको हिन्दू–मुस्लिम की सीमाओं में परिभाषित करने की कोशिश निरंतर जारी रहीं। बार–बार उनकी 'आइडेन्टिटी' पर सवाल उठाये गए और बदल–बदलकर उन पर नए–नए लेबल लगाए गए, कबीर सबको नकारते रहे पर भारत जैसे देश में बिना लेबल काम भी तो नहीं चलता। कबीर कहते रहे–

कामी, क्रोधी, लालची इनसे भक्ति न होय
भक्ति करे कोई शूरमा, जाति, बरन, कुल खोय

और लगातार उनकी आइडेन्टिटी गढ़ने का काम चलता रहा। बार–बार से तंग आकर फिर कबीर ने खुद ही घोषणाएँ शुरू की और कहा–'अवधु बेगम देश हमारा' पर इससे भी काम न चला तब खड़े होकर कहा–'तू बांभन मैं काशी का जुलाहा'। इससे विरोधी कुछ चुप हुए और शान्त भी। यह 'जुलाहा' होने की घोषणा केवल परवरिश की आइडेन्टिटी की उद्घोषणा मात्र नहीं थी बल्कि सामाजिक के साथ आर्थिक (व्यापारिक) आइडेन्टिटी की उद्घोषणा भी थी और पूरे गर्वोवित के साथ की गई थी। चरखे की ताकत का उल्लेख डॉ. तेज सिंह की किताब में भी है–"प्रसिद्ध मार्क्सवादी इतिहासकार इरफान हबीब ने किसी जगह पर लिखा है कि मध्ययुग में चरखे–करघे और रहट ने एक क्रांतिकारी भूमिका निभाई थी जिसकी वजह से नई सामाजिक शक्तियों का उदय हुआ और पिछड़े और निम्न जातियों का आर्थिक–सामाजिक आधार मजबूत हुआ।"(7)

जुलाहा होना अपने श्रम और व्यापार पर सार्वजनिक गौरव का गान है। वरना कबीर कहते रहें –'हिंदू कहो तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं', यही नहीं बल्कि कहा–'हम बासी उस देस के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं' ऐसा व्यक्ति अपनी एक सोशियो–इकॉनॉमिक आइडेंटिटी खड़ा करता है और स्वाभिमान से उसे बड़ा करता है।

यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि दलित विमर्शकार उन्हें दलित का लेबल चिपका रहे हैं यह भी कितना उचित है? कबीर स्वयं को मानव के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे हैं वे जाति या समुदाय पर नहीं, मनुष्यत्व पर जोर दे रहे हैं। जाति की अवधारणा को सिरे से खारिज (रिजैक्ट) करने वाले उस महान मानवतावादी रचनाकार को जाति या जातिगत विमर्श की सीमा में बाँधने की कोशिश पर भी सवाल उठ रहे हैं।(8) निश्चित रूप से वे मानव के विभाजनकारी चिंतनधारा को स्वीकार नहीं कर सकते। स्वयं को 'जुलाहा' कहकर वे किसी हीनग्रंथि के शिकार नहीं है बल्कि बुनकर होने के गौरव और बाजार की ताकत का बोध कराते हैं। यह उत्पादन की शक्ति का बल है कि बाजार में आकर 'लोअर सोशियो इकॉनॉमिक स्टेटस' का व्यक्ति भी अपनी पुरानी अस्मिता (निम्न जाति का पहचान) के साथ एक नई अस्मिता (व्यापारिक पहचान) बनाते हुए अस्तित्व

Scanned by CamScanner

स्थापित कर सकता है। कबीर के 'जुलाहा' होने की घोषणा के साथ वे बाजार की अर्थसत्ता से जुड़ जाते हैं, अब वे अकेले नहीं हैं, उनके साथ श्रमिक और व्यापारिक वर्ग भी जुड़ गया है। वे नाम के जुलाहे नहीं हैं– बुनकरी उनका पेशा है, व्यवसाय है। वे कपड़ा बुनते है और बेचते हैं। चरखा, करघा, रहट और बाजार अब उनके साथ संयुक्त हो जाते हैं।

भारत की प्राचीन हिन्दू परम्परा में कर्म या व्यवसाय को वर्ण व्यवस्था से संयुक्त रखा गया था और कर्म से जातियों की पहचान कर ली जाती थी। बड़े–बड़े संतों के पीछे भी जातिवादी विशेषण आज पर्यन्त जुड़े हुए हैं। कबीर ग्रंथावली का उदाहरण देखिए – "नामदेव दरज़ी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे, परन्तु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।"(9)

इन संतो के प्रति हमारी दृष्टि अब भी नहीं बदली है। नीची श्रेणी के कहे जाने वाले इन्हीं संतों ने वर्णभेद से जन्में उच्चता–नीचता को तो रिजेक्ट किया ही, बल्कि वर्ग–भेद से जन्म ले रहे उच्चता–नीचता को भी दूर करने का प्रयास किया। ये ऐसा कर सके क्योंकि आर्थिक स्वायत्ता या आत्मनिर्भरता थी, बाजार का साथ–सहयोग था। शायद इसीलिए इन्होंने अपने कर्म (व्यवसाय) को अत्यंत पवित्र भाव से आजीवन जारी रखा। कबीर को व्यवसाय बहुत प्यारा है, इसलिए वे व्यापार को श्रेष्ठ कार्य मानते है, बाजार को सजाने और व्यवसाय को सँवारने की बात कहते हैं–

"चोखौ बनज व्यौपार
जब लग देखौ हाट पसारा
उठि मन बणियों रे, करि ले बणज सवारा।"(10)

वे तो मन को बनिया कह रहे हैं। अर्थात मन व्यवसाय में रंग गया है। व्यवसाय की ताकत के दम पर वे विघटनकारी ताकतों को ललकारते हैं और यमराज से भी कहते हैं कि व्यापारी कहीं नहीं झुकता, इसीलिए भूमि (कृषि) के कार्य छोड़कर हम व्यापारी हो गए–

"रे जम नाँहि नवै व्यापारी, जे भरैं जगाति तुम्हारी
बसुधा छाँड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यो हरि को नाँऊँ।"(11)

व्यवसाय की ताकत को आज हम पूरी दुनिया में देख सकते हैं। देश में वही राजनैतिक दल सत्ता में काबिज होते हैं व्यापारी जिनका साथ देते हैं। विश्व में जो अर्थशक्ति (व्यापारिक महाशक्ति) हैं वही अमेरिका, रूस, चीन आदि राजनैतिक व सैन्य दृष्टि से भी महाशक्ति हैं। कबीर और मध्यकाल के संत इस बात को अनुभव कर रहे थे कि व्यापार में शक्ति है। कबीर तो ललकार कर कहते हैं कि बाजार में जिसके पास पूँजी है, उसी के पास ताकत है बाकी के पास कोई बल नहीं–

"जिनकै तुम अगिवानी कहियत, सो पूँजी हम पासा।
अबै तुम्हारी कछु बल नाँही, कहै कबीरा दासा।।"(12)

और यह पूँजी कबीर के पास है। इसीलिए कबीर बाजार में रहते हैं, वे वहाँ से भागते नहीं हैं बल्कि जागरूकता से उसे ताकते रहते हैं। उनके पास बाजार को देखने, परखने, समझने की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि है।

Scanned by CamScanner

कबीर उत्पादक भी हैं और विक्रेता भी। वे कपड़ा बुनते हैं – "झीनी झीनी बीनी चदरिया... ठोक ठोक कै बीनी चदरिया"। अर्थात बाजार में लान्च करने के पहले प्रोडक्ट के निर्माण प्रक्रिया एवं क्वालिटी (गुणवत्ता) पर वे विशेष ध्यान देते हैं। इससे बाजार में उनकी साख बनी रहती है। प्रोडक्ट में क्या–क्या कन्टेन्ट मिलाया गया है इस बात की जानकारी भी उपभोक्ता (ग्राहक) को देते हैं। इस तरह उनका व्यापार पारदर्शी है। इंगला पिंगला की ताना भरनी, सुखमन की तार, अष्ट कमल का चरखा, पंचतत्व, तीनगुण, निर्माण अवधि दस माह सब कुछ वे बताते हैं। इतना ही नहीं वे प्रोडक्ट का विज्ञापन भी करते हैं और उपयोग का तरीका भी बताते हैं ताकि प्रोडक्ट ज्यादा दिन चले –

"दास कबीर जतन से ओढ़िन, ज्यों कै त्यों धरि दीनी चदरिया"

कबीर को अपने व्यवसाय की बारीकियों का ज्ञान था। उन्हें रूई के उद्योग धन्धों में सूती कपड़ों की बुनाई (कारीगरी) का विशेष ज्ञान था जिसका जिक्र उनके साहित्य में सहज मिल जाता है।

वे सूत काटने, चरखा चलाने का महत्व बताते हुए कहते हैं –

सासू कहै काति बहू ऐसै, बिन कातैं निसतरिबौ कैसें।
कहै कबीर सूत भल काता, रहटां नहीं परम पद दाता।।[13]

अर्थात यदि अपना पेशा (बुनकरी) नहीं करेंगे तो जीवन कैसे निस्तार होगा यानी चलेगा, इसलिए कर्म करना जरूरी है।

कबीर को जुलाहे का कार्य तो ज्ञात था ही बल्कि उन्हें कुम्हार, लोहार, स्वर्णकार, चर्मकार, माली, बढ़ई, कसाई, धोबी, जौहरी, सिकलीगर (दर्पण बनाने), धार (सान) करने वाले, वैद्य, सेवक आदि के औजारों एवं कार्य प्रक्रियाओं का भी ज्ञान था।[14] इसका अर्थ यह है कि वे अपने ही समान श्रम और उत्पादन करने वाले श्रमिक, कारीगर एवं व्यापारी वर्ग से सम्बद्ध थे। फिर भी वे स्वयं का एक नादान व्यापारी कहते रहे। उनकी विनम्रता चरम पर थी। शालीनता और विनम्रता से ही बाजार में टिका जा सकता है।

कबीर ऐसे व्यापारी हैं जो लेने योग्य है उसी व्यक्ति से लेनदेन करते हैं और उचित कीमत भी लेते हैं। न अयोग्य (अपात्र) को देते और न मुफ्त देते, उनके पास फ्री का ऑफर नहीं है। वे कहते हैं लेने वाले तो बहुत आते हैं पर वे कुछ दिए बिना ही ले लेना चाहते हैं उनके साथ सौदा नहीं हो सकता। कलार का उदाहरण देते हुए कहते हैं –

कबीरा भाटी कलाल की बहुतक बैठे आइ
सिर सौंपे सोई पिवै, नहिं तो पिया न जाइ

अर्थात मुफ्तखोरी के लिए कोई स्थान नहीं है, बाजार में बिकने वाली वस्तु का उचित दाम विक्रेता (उत्पादक) को मिलना ही चाहिए।

इसी तरह वे जमाखोरी, मुनाफाखोरी या गलत तरीके से धन कमाने का विरोध करते हैं–

पहले बुरा कमाई करि बाँधी विष की पोट
कोटि करम फिल पलक मैं आया हरि की ओट

वे व्यापार में एक नैतिकता, मर्यादा व साफ–सुथरे लेन–देन की बात करते हैं। कबीर की व्यापारिक दृष्टि साफ है। बाजार में उत्पादन का मूल्य या लाभ तो कमाना है पर बाजार में नैतिकता भी रहे, गलत तरीके

Scanned by CamScanner

से धन कमाने का निषेध है, क्योंकि ऐसा व्यवसाय क्षणिक हो सकता है टिकाऊ नहीं। इसी तरह जमाखोरी (अतिशय धनसंचय) की प्रवृत्ति को कबीर ठीक नहीं मानते। वे कहते हैं –

काहे को भीत बनाऊँ टाटी, का जाणूँ कहँ परिहै माटी

वे धन को ठीक से इनवेस्ट करने की बात करते हैं। उनकी दृष्टि में बाजार केवल हाट तक नहीं है बल्कि पूरे जीवन तक फैला हुआ है। इस बाजार में धन की बचत इनवेस्टमेन्ट बहुत जरूरी है जो कि दो प्रकार से होना चाहिए, एक लॉंग टर्म और दूसरा शार्ट टर्म जैसे आज फिक्स्ड डिपॉजिट और रिकरिंग डिपॉजिट है। तभी बाजार में व्यापार की सार्थकता होगी –

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट
पूरा किया बिसाहुणा, बहुरि न आवौं हट्ट

यहाँ तेल को शार्ट टर्म व बाती को लॉंग टर्म निवेश के रूप में समझा जा सकता है।

आज प्रोडक्ट के निर्माता कहते है – "पहले इस्तेमाल करें, फिर विश्वास करें" उसी तरह उन्होंने अपने प्रोडक्ट को 'जतन' से उपयोग करने की बात की है। आज सरकारें "जागो ग्राहक जागो" का संदेश प्रचारित –प्रसारित कर रही है, जबकि कबीर अपने युग के महान सचेतक रहे। वे बाजार में रहकर भी बाजार के खतरों से आगाह करते रहे। ग्राहक को सावधान करते हुए कहते हैं–

मन रे, जागत रहिये भाई

कबीर बाजार के भीतर हैं पर उनके भीतर कोई बाजार नहीं है। वे बाजार की जरूरत और सीमाएँ तय करते हैं इसलिए वे बाजार का उपयोग करते है, बाजार उनका उपयोग नहीं कर पाता। उनके हाथों में विवेक की जलती हुई मशाल है जो सतत् मार्गदर्शन करती है –

कबीरा खड़ा बाजार में, लिया लुकाठी हाथ
जो घर बारै आपना, चलै हमारो साथ

इस विवेकपूर्ण व्यवसाय की मशाल से हाशिए के वंचित वर्गो श्रमिकों, कारीगरों, छोटे व्यापारियों के घरों में चूल्हे जले और सुखी–समृद्ध जीवन का उजियारा फैला। यहाँ बारा अर्थात प्रकाशित करना है। कबीर कहते हैं जिन्हें अपने घर–परिवार को प्रकाशित करना हो वे हमारे साथ व्यवसाय के मार्ग पर चलें, विवेकपूर्ण व्यवसाय दृष्टि के साथ बाजार में उतरें। यह उनका निमंत्रण है बाजार में।

कबीर की व्यावसायिक दृष्टि स्पष्ट, साफ, दूरदर्शी है। वे कहते हैं बाजार में रहो, व्यापार (व्यवसाय) करो, यह बाजार न तो तुम्हारा दोस्त है और न दुश्मन। व्यवसाय (बाजार) सबके साथ समान व्यवहार करता है, इसका रवैया किसी के प्रति पक्षपातपूर्ण नहीं होता –

कबीरा खड़ा बाजार में, माँगे सबकी खैर
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर

राजसत्ता और धर्मसत्ता की तुलना में अर्थसत्ता बहुत लोकतांत्रिक और समदर्शी होता है, यह भेदभाव नहीं रखता। तभी तो कबीर उतरते हैं बाजार में और बुनते है चादर, साथ ही बुनते हैं कविता, यही नहीं वे सपने भी बुनते है सुन्दर जीवन के, समतामूलक समाज के। बाजार उनके लिए जीवन की सहज पाठशाला व प्रयोगशाला है। उनकी बुनी चादर बचाती है सर्दी, गर्मी, (बाहरी वातावरण) की प्रतिकूल

Scanned by CamScanner

स्थितियों से वहीं उनकी बुनी हुई कविताएँ जीवन संघर्ष के थपेड़ों के बीच जिन्दा रखती है हमें हमारी अस्मिता के साथ।

कबीर बाजार को समझते हैं और बाजार में डटे रहते हैं यह जरूरी भी है। लेकिन वे पूर्णतः जागरूक और सावधान हैं। वे जानते हैं बाजार में दूर से आनेवाले खतरों को, उनकी आहट को पहचानते हैं। मनुष्य का लोभ बड़ा हो जाए इसकी चिंता है उन्हें। उनके समय में बाजार बड़े हो रहे थे, नगर व व्यापार का विकास वे देख रहे थे। कर व लगान की प्रथा चालू हो गई थी। वे जानते थे कि मनुष्य भय और लोभ में फँसकर अंधा हो जाता है। मनुष्य की कामना (इच्छा) भी अनंत है, यदि बाजार वहाँ तक पहुँच गया तब बाजार बड़ा होकर सुरसा की तरह मनुष्यता को निगल न जाए इसकी चिंता उन्हें थी–

सुखिया सब संसार है खावै अरू सोवै
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै

बाजार हर युग की जरूरत है। जब बाजार हमारे जरूरत की चीजें निर्मित करता है तब तक बाजार है, लेकिन जब बाजार अपनी चीजों के आधार पर हमारी जरूरतें निर्मित करने लगता है तब भय, भावना और कामनाओं को बढ़ाकर किया गया यह शोषण बाजारवाद है। आज जिन अर्थों में हम बाजारवाद शब्द का इस्तेमाल करते हैं लगभग उन्हीं अर्थों में कबीर ने माया शब्द का प्रयोग किया है–

"मीठी मीठी माया तजी न जाई
अग्यानी पुरिष कौ भोलि भोलि खाई"(15)

वे कहते हैं– माया महाठगिनी हम जानी। यह माया हमारी कामनाओं का संसार है, जो है नहीं पर लुभावने सपनों में आभासित होता है। बाजारवाद ऐसा ही आभासी सपनों की दुनिया का एक मायाजाल बुनता है जिसके चकाचौंध में अज्ञानी और असावधान व्यक्ति फँस जाते हैं। यदि बाजार में रहकर बाजारवाद से बचे रहना है तो इसके मायाजाल से बचे रहना होगा अन्यथा हम कीड़े–मकोड़ों की तरह नष्ट हो जाएंगे –

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि–भ्रमि इवै पड़ंत

कामनाओं के वशीभूत होकर व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है, उसे आवश्यकता और इच्छा में फर्क नहीं दिखता फिर धीरे–धीरे बाजार चौराहे से बेडरूम और दिलो–दिमाग तक हावी हो जाता है। इस बाजारवाद से बचने के लिए कबीर 'विवेक' की युक्ति बताते हैं।

कबीर दो प्रकार के बाजारों की चर्चा करते हैं, हालांकि उनके शब्द योग की शब्दावली से हैं पर बाजार पर भी फिट बैठते हैं–

चौपड़ि माड़ी चौहटे अरध उरध बाजार
कहै कबीरा रामजन, खेलौ संत विचार

जिस तरह नगर और व्यापार फैल (विकसित हो) रहे थे, उससे दो बाजार बन रहे थे एक नीचे का बाजार (गाँव का हाट) और दूसरा शहरों का बाजार (बड़ा बाजार) आज की भाषा में एक को लोकल मार्केट (स्थानीय बाजार) और दूसरे को ग्लोबल मार्केट (वैश्विक बाजार) कहते हैं, और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मॉल संस्कृति वाला ग्लोबल मार्केट किस कदर स्थानीय जरूरतों को पूरा करने वाले लोकल मार्केट को नष्ट कर रहा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। चौपड़ का खेल धनी लोगों का खेल है। आज बड़े–बड़े अरबपति

Scanned by CamScanner

लोग बाजार में उतर गए हैं और अपने दाँव आजमा रहे हैं। ग्लोबल ने लोकल को अर्थहीन, शक्तिहीन, अप्रासंगिक सा बना दिया है। इससे छोटे व्यापारी, कारीगर, श्रमिक के जीवन पर अस्तित्व संकट छा रहा है। श्रमिक किसान, छोटे व्यापारी कर्ज में डूब रहे और आत्महत्या की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। कबीर यहाँ भी 'विवेक' की बात करते हैं।

वे व्यवसाय में हाय–हाय करने को भी उचित नहीं मानते। यदि व्यवसाय है तो लाभ के लोभ में शरीर ही क्षीण न हो जाना चाहिए–

''धंधा करत चरन कर घाटे, जाउ घटि तन खीना''(16)

बाजार में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक संतुलन भी हो। तराजू–बाँट का काँटा (पलड़े) इसी बात को सिद्ध करते है कि न तो कम, न ज्यादा बल्कि संतुलित (बराबर)। बाजार का यह सिद्धांत जीवन पर भी लागू होता है।

कबीर बाजार में चल रहे ऋण (कर्ज) और ब्याज से भी वाकिफ थे, वे इन सूदखोरों से बचने की सलाह देते हैं –

''मेरे जैसे बनिज सौ कवन काज,
मूल घटै सिरि बधै ब्याज।''(17)

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कबीर एक विराट जागरूक चेतना है और उनका रचना संसार बहुआयामी है। वे बाजार से जुड़े हैं। बाजार उन्हें ताकत देता है। वे बाजार के साथ हैं पर बाजार के मायाजाल (बाजारवाद) से बचने की सलाह देते हैं। पारख और विवेक की मदद से हम सुरक्षित रह सकते हैं। कबीर से हम विविध सन्दर्भों में प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। यदि व्यवस्था परिवर्तन करना है तो बाजार में रहकर बाजार से ताकत ग्रहण करनी होगी– हमें भी कबीर की तरह बाजार में खड़ा होना सीखना होगा। यह संसार एक बाजार है और व्यक्ति या व्यक्तित्व का वस्तुकरण न हो जाए, बल्कि वस्तु का उपयोग व्यक्ति के द्वारा हो सके इस बात की फिक्र करनी होगी। बाजार के दाँव–पेंच को समझते हुए इसके मायाजाल (बाजारवाद) से बचने की कला सीखनी होगी। शायद हमें मार्गदर्शन देने के लिए ही, कबीर बाजार में खड़े हैं – कबीरा खड़ा बाजार।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. तेज. *सबद बिबेकी कबीर*, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2004, पृष्ठ 192
2. वही, पृष्ठ 193–194
3. वही, पृष्ठ 192
4. सिंह, डॉ. बबलू, (संपा.), *समाजदर्शी शोध पत्रिका (अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक)*, जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स दिल्ली, अप्रैल–जून 2017, पृष्ठ 37
5. अग्रवाल, पुरूषोत्तम. *अकथ कहानी प्रेम की (कबीर की कविता और उनका समय)*, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 98–99
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *कबीर*, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 17
7. सिंह, डॉ. तेज, *सबद बिबेकी कबीर*, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2004, पृष्ठ 195
8. टोकी, डॉ. राजेन्द्र. *कबीर : दृष्टि प्रतिदृष्टि*, विमला बुक्स दिल्ली, 2012, पृष्ठ 18–19
9. दास, डॉ. श्यामसुंदर. *कबीर ग्रंथावली*, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ 13

Scanned by CamScanner

10. वही, पृष्ठ 172
11. वही, पृष्ठ 178
12. वही, पृष्ठ 178
13. वही, पृष्ठ 171
14. बाठ, डॉ. सुखविन्दर कौर. *कबीर का लोकतात्विक चिंतन,* वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 102–108
15. दास, डॉ. श्यामसुंदर. *कबीर ग्रंथावली,* लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ 172
16. वही, पृष्ठ 175
17. वही, पृष्ठ 210

Scanned by CamScanner